धार्मिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा का वर्तमान शिक्षा में महत्व

डा. सावित्री तड़ागी,

एसोसिएट प्रोफेसर/विभागाध्यक्ष (शिक्षा शास्त्र),
विद्यान्त हिन्दू पी.जी. कालेज, लखनऊ।

मानव जीवन में शिक्षा की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। शिक्षा औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की होती है। शिक्षा के औपचारिक रूप में जान–बूझकर एवं सोच–समझकर निश्चित समय पर निश्चित उद्देश्य के लिए पाठ्यक्रम की शिक्षा प्रदान करना है और अनौपचारिक शिक्षा वह है जिसे बालक आनुषंगिक रूप से उठते–बैठते, चलते–फिरते, परिवार में और मित्रों के साथ खेलते–कूदते ग्रहण कर लेता है।

जन्म से बालक पशुवत् आचरण करता रहता है। उसके व्यवहार में सौन्दर्य लाने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा के ही द्वारा समाज अपनी संस्कृति की रक्षा करता है और सभ्यता के रथ को आगे बढ़ाता है। जीवन की उदात्ता, उच्चता, सौन्दर्य एवं उत्कृष्टता शिक्षा द्वारा सम्भव है। बालक की वैयक्तिक प्रगति, उसका शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास तब तक भली प्रकार नहीं हो पाता जब तक वह शिक्षा ग्रहण न करे। समाज में सुख–समृद्धि लाने का कार्य भी शिक्षा ही करती है। यहॉ औपचारिक शिक्षा के संदर्भ में विषयगत विवेचन प्रस्तुत है।

शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानंद का कथन है, ''शिक्षा मनुष्य के भीतर निहित पूर्णता के विकास का नाम है। वह शिक्षा जो समुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बना सकती, जो उनकी चरित्र शक्ति का विकास नहीं कर सकती, जो उनके मन में परहित की भावना और सिंह के समान साहस पैदा नहीं कर सकती, क्या उसे हम शिक्षा का नाम दे सकते हैं? विवेकानंद का यह स्पष्ट मत है कि शिक्षा उस जानकारी का नाम नहीं है जो शिशु के मस्तिष्क में भर दी गई है और वहाँ पड़े–पड़े सड़ती रहती है और जीवन में कुछ काम नहीं आती है। उनकी यह स्पष्ट मान्यता है कि शिक्षा को धर्म से पृथक नहीं किया जा सकता है। किंतु यह धर्म सांप्रदायिक धर्म नहीं है। यह वेदांत धर्म है जिसमें ब्रह्म की विराटता मौजूद है। स्वामी विवेकानंद ने मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति के अतिरिक्त शारीरिक शक्ति को भी महत्त्व दिया है और मानते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सभी तरह से शक्तिशाली बनाना है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर यह मानते थे कि शिक्षा का काम प्रकृति देवी की भाँति मानवीय परिवेश के साथ प्रियत्वबोध जाग्रत करने का है। शिक्षा का काम केवल बौद्धिक विकास करना नहीं है बल्कि मानव की कोमल वृत्तियों का विकास करना भी है। इसलिए शिक्षा में धर्म और दर्शन ही नहीं, साहित्य और कला को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

महात्मा गाँधी के अनुसार, ''शिक्षा का अर्थ है बालक और मनुष्य के शरीर मन और आत्मा में जो कुछ श्रेष्ठ है उसका प्रस्फुटन करना। आत्मा का विकास ही चरित्र निर्माण है। केवल साक्षरता शिक्षा का सही उद्देश्य कभी नहीं कहा जा सकता। साक्षरता केवल सही शिक्षा को प्राप्त करने का एक माध्यम है।'' गाँधी जी भी यह मानते थे कि शिक्षा को वास्तविक धर्म से पृथक नहीं किया जा सकता है, क्योंकि धर्म के माध्यम से ही व्यक्ति के विचार और आचरण के उदात्त बनाया जा सकता है।

अरविंद ने भी शिक्षा के संदर्भ में कुछ इसी तरह के विचार प्रस्तुत किए हैं। उनके

अनुसार, ''बालक की शिक्षा का उद्देश्य उसकी कृति में जो सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अंतरंग और जीवन–पूर्ण है, उसे अभिव्यक्त करना होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति और समाज को दैवीय पूर्णता प्रदान करने में सहायता देना है। अरविंद के दर्शन को एक ऐसा दर्शन कह सकते हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को सभी तरह से परिपूर्ण बनाना चाहता है। अरविंद ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, "शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए विकासशील जीवात्मा के अपने भीतर जो कुछ सर्वोत्तम है उसके प्रस्फुटन में सहायक होना तथा एक श्रेष्ठ उपयोग के लिए उसे परिपूर्ण बनाना। इसलिए मनुष्य की देह, उसके प्राण, उसकी इंद्रियॉ, उसका मन, उसका हृदय, सभी कुछ विकसित करना परिपूर्ण शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।''

भारतीय अध्यात्मिक चिंतन के अनुसार मानव जीवन के लिए चार पुरुषार्थों का परिपालन आवश्यक है। और वे हैं –धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। धर्म और मोक्ष आत्मा के गौरव के सरंक्षण के लिए आवश्यक है, जबकि अर्थ और काम सांसारिक वन की संपन्नता के लिए जरूरी है। शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति को सांसारिक रूप से संपन्न बनाने के साथ–साथ ही आध्यात्मिक रूप से बलवान बनाना भी होना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा में आदर्श और व्यावहारिकता दोनों का संगम होना चाहिए।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का सामंजस्य करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। परा और अपरा विद्याएं जब समन्वय के सूत्र में बंध जाती है, तब उनसे प्रभावित व्यक्ति केवल प्रिय दिखाई देने वाली वस्तुओं के पीछे नहीं दौड़ता है और श्रेय मार्ग का अनुसरण करने के लिए तत्पर हो जाता है। शिक्षा तभी उस स्तर को स्पर्श करती है जब शिक्षा का उद्देश्य निश्चित वर्ग, समाज या राष्ट्र के लिए सीमित न होकर समस्त लोक कल्याण के लिए अग्रसर होना होता है। भारतीय शिक्षा का उद्देश्य कभी भी संकीर्णता उत्पन्न करना नहीं रहा। उसका उददेश्य हमें विश्व–जनीन व्यक्ति के रूप में ढालना रहा है। इसलिए वह हमेशा यह कहती रही है कि इस देश की शिक्षा अपने स्वरूप के कुछ इस तरह की हो कि समस्त विश्व उससे प्रेरणा प्राप्त कर सके।

आज शिक्षा के विकास के कारण मानव ने यहां अपनी बुद्धि के बल पर ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में नई उच्चाईयों को छुआ है वहीं दूसरी ओर वह संवेदना और मानवीय गुणों से दूर होता जा रहा है। पूरे विश्व को प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता, भाषा–वाद व क्षेत्र वाद जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आंतकवाद व हिंसा हमारे पर हावी होते जा रहे हैं। जीवन मूल्यों में निरन्तर गिरावट आ रही है, पारिवारिक सम्बन्ध बिखर रहे हैं। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को उपभोग्य वस्तु की तरह, एक साधन की तरह देख रहा है जिससे वह अपनी भौतिक आवश्यकताएं पूरी कर सके। ऐसा नहीं है दार्शनिकों व शिक्षाविदों को इस बात का ज्ञान नहीं है और उन्होंने इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न नहीं किया। विभिन्न कालों में विभिन्न दार्शनिकों ने अपने–अपने समय के अनुसार एक शिक्षा प्रणाली देने का प्रयत्न किया है जिससे समाज में फैली विभिन्न समस्याओं का समाधान हो सके व बालक का भी पूर्ण विकास हो सके, परन्तु इसके बाद भी समस्या वैसी की वैसी खड़ी है। आज भी यह प्रश्न हमारे सामने खड़ा है कि हमारी शिक्षा प्रणाली कैसी हो?

आधुनिक शिक्षा मनुष्य को मात्र सुविधा भोग के संसाधन उपलब्ध करने में सक्षम बनाती है। शिक्षा के माध्यम से कृषि, कम्प्यूटर, तकनीकी, प्रौद्यौगिकी, संचार, व्यापार, अनुसंधान, अंतरिक्ष विज्ञान आदि क्षेत्रों बहुत प्रगति हुई है तथा व्यवसाय व रोजगार के नवीन अवसर सृजित

हुए हैं? परन्तु भौतिकवाद की दौड़ में मानवतावाद पीछे छूटता दिखाई देता है।

वर्तमान में विद्यार्थियों मे अनुशासन की समस्या मुख्य रूप से नैतिक समस्या है। युवकों में अनुशासन के प्रति नैतिक भावना का उदय ही नहीं हो पाता और वह यह सोच नहीं पाते कि उन्हें क्या करना चाहिए। अनुशासनहीनता, धैर्यहीनता, असहनशीलता, हिंसा, क्रोध, असंयम, गुरूजनों के प्रति अनादर, जातिवाद, धर्मांधता आदि अनेकों समस्याएं जो वर्तमानकाल में दिखाई देती है व किसी न किसी रूप में नैतिक ,आध्यात्मिक व धार्मिक शिक्षा के न होने के कारण ही है।

वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा मात्र रोजगारोन्मुखी न होकर समग्र विकासोन्मुखी हो। हम एक ऐसी साहित्यिक, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा प्रणाली का निर्माण करें जो देश की आवश्यकताओं के अनुरूप राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रतिबिम्ब करे तथा जो राष्ट्र को ध्येय की ओर ले जाये। हमें ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का सृजन करना चाहिए जो हमारी अपनी परम्पराओं पर आधारित हो और जो हमारे लोगों के जीवन की अवश्यकताओं और आकाक्षाओं के अनूरूप हो। धार्मिक, नैतिक व अध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा वर्तमान शिक्षा से सम्बंधित समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रत्येक स्तर पर यह अनुभव किया गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है, जो जीवन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं है। अतः वर्तमान शिक्षा के स्वरूप में अनिवार्यतः परिवर्तन होना चाहिए। हमारे देश के जिन दार्शनिकों व विचारकों ने शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास किया उनमें से अधिकांश पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे। लेकिन भारतीय शिक्षा पद्धति के दोषों का समाधान पाश्चात्य सभ्यता की प्रणाली अपनाकर नहीं हो सकता। आज तुलनात्मक शिक्षा ने सिद्ध कर दिया कि किसी भी देश की शिक्षा वहां की भौतिक, राजनैतिक, आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप निर्मित होती है। अतः किसी देश की शिक्षा बिना इन विषयों का ध्यान रखे, दूसरे देश में लागू नहीं की जा सकती। इसलिए भारत की शिक्षा प्रणाली का स्वरूप जब तक भारतीय नहीं होगा, उसे दोषों से मुक्त नही किया जा सकता। भारतीय शिक्षा के मूल में भारतीय दर्शन, धर्म, आध्यात्मिकता, नैतिक मूल्य नहीं होगें, तो भारतीय भूमि पर कोई अन्य शिक्षा व्यवस्था सही सफल नहीं हो सकती।

शिक्षा की दृष्टि से भारतीय दृष्टिकोण प्रमुख रूप से आध्यात्मवादी रहा है। आध्यात्मवादी होने का यह अर्थ नहीं है – भारतीय शिक्षा सांसारिकता का पूरी तरह परित्याग करती है। इसका उद्देश्य केवल यह है कि शिक्षा को सर्वांगी होना चाहिए। उसे भौतिक तथा अध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से संतुलित होना चाहिए। शिक्षा का अंतिम उद्देश्य आध्यात्मिक पूर्णता प्रदान करना होना चाहिए, तभी वह व्यक्ति का सही अर्थ में उत्थान कर सकती है। इस तरह की शिक्षा से वह सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है जो व्यक्ति को जीवन संघर्ष के क्षणों में भी सुख दुःख की परवाह न करके आगे ही आगे बढ़ाती रहती है। शिक्षा एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों का विकास किया जाता है। बालक के मस्तिष्क में ज्ञान को ठूँसना अब इसका अर्थ नहीं स्वीकार किया जाता।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए अनेक आयोग व समितियों का गठन किया गया। लगभग सभी ने किसी न किसी रूप में नैतिक, आध्यात्मिक व धार्मिक शिक्षा का समर्थन किया है।

नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा से सम्बन्धित कुछ समितियां/आयोग एवं उनके सुझाव निम्नवत् हैः–

धार्मिक शिक्षा समिति 1944–46

1. शिक्षा की प्रत्येक योजना में जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को स्थान दिया जाये।
2. सब धर्मों के सामान्य नैतिक व आध्यात्मिक सिद्धान्त को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाये।
3. सब धर्मों की सम्मति से उनके सामान्य नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का शैक्षिक कार्यक्रम तैयार किया जाये।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग–1948

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित हुआ। इसने नैतिक व धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित किये जाने पर बल दिया। इस आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

1. प्रत्येक विद्यालय अपने शैक्षणिक कार्य का प्रारम्भ प्रार्थना सभाओं से करे जिसमें कुछ मिनट का मौन रखा जाये।
2. डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में छात्रों को महात्मा बुद्ध, कबीर, नानक, ईसा मसीह, सुकरात, महात्मा गाँधी आदि महान धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ पढाई जाये।
3. द्वितीय वर्ष में धार्मिक ग्रन्थों में से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भागों को पढ़ाया जाय।
4. तृतीय वर्ष में धर्म दर्शन की मुख्य समस्याओं का अध्ययन कराया जाय।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति

यह समिति श्री प्रकाश जी की अध्यक्षता में 1959 में गठित हुई व इसकी रिपोर्ट जनवरी 1960 में आयी, जिसमें निम्न सुझाव दिये गये–

सामान्य सुझाव

1. शिक्षा के प्रत्येक कार्यक्रम में परिवार को उचित स्थान दिया जाये तथा उसके दोषों का उन्मूलन किया जाये।
2. राधाकृष्णन आयोग के विचारों का क्रियान्वयन तथा ईश–विनय से विद्यालय का प्रारम्भ हो।
3. प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे ग्रन्थ रखे जाये जो प्रत्येक धर्म के मूल सिद्धान्त को बतायें।

प्राथमिक स्तर

1. प्रातः काल स्कूलों में समूहगान हो।
2. धार्मिक नेताओं व धर्म प्रवर्तकों क जीवनियों का ज्ञान कराना।
3. 'कार्य ही पूजा है' यह बताते हुए छात्रों में सेवाभाव को प्रोत्साहन देना।
4. खेल एवं शारीरिक क्रियाओं द्वारा चरित्र निर्माण करना।

माध्यमिक स्तर

1. प्रातःकाल प्रार्थना सभा हो जिसमें दो मिनट का मौन रखा जाय।
2. संसार के प्रमुख धर्मों के सिद्धान्तों को ज्ञान कराया जाये।
3. छात्रों के मूल्यॉकन करते समय उनके चरित्र व व्यवहार को ध्यान में रखा जाये।
4. प्रत्येक सप्ताह एक घण्टा नैतिक शिक्षा का हो जिसमें छात्रों में वाद–विवाद की क्षमता को विकसित किया जाये।
5. विद्यालय में कभी–कभी कुछ ऐसे वक्ता आमंत्रित किये जॉय जो नैतिक व सामाजिक मूल्यों पर भाषण दें।

विश्वविद्यालय स्तर

1. विभिन्न धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों को पाठ्यक्रम में रखा जाये।
2. धार्मिक शिक्षा डिग्री कक्षाओं के प्रथम दो वर्षों में दी जाये।
3. विभिन्न धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन कराया जाये।
4. छात्रों को समाज सेवा का अधिक से अधिक अवसर दिया जाये जिससे उन्हें नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को सिखाया जाये व उनका व्यवहारिक अभ्यास कराया जाये।

कोठारी शिक्षा आयोग–1964–66

सन् 1964 में डॉ० डी०एस० कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग गठित हुआ व इसकी प्रथम रिपोर्ट 1966 में प्रकाशित हुई। इस आयोग का विचार था कि आज के युग में आधुनिकीकरण का अभिप्राय यह समझता है कि नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को छोड़ दिया जाये व आत्म अनुशासन के बन्धनों को तोड़ दिया जाये। आधुनिकीकरण को हमें नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के ऊपर आधारित करना चाहिए। इन मूल्यों के अभाव में आज का युवक सामाजिक व नैतिक संघर्षों से गुजर रहा है। इस कारण आज हमें मूल्य परख शैक्षिक व्यवस्था की आवश्यकता है।

आयोग के सुझाव

1. केन्द्र एवं राज्य सरकार का यह प्रयास होना चाहिए कि वह अपने अधीन जो भी शैक्षिक संस्थाएँ है उनमें नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा को अनिवार्य बनाये।
2. निजी शिक्षण संस्थायें भी इसका पालन करें।
3. विभिन्न धर्मो से सम्बन्धित अध्यापक कक्षाओं में पढ़ाये।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

इस नीति में सामाजिक नैतिक मूल्यों कोसमाज में स्थापित करने हेतु एक शक्ति माध्यम बनाने के लिए पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन करने की बात कही गई है, जिससे छात्रों में नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का भाव जागृत हो सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

उल्लेखनीय है कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को दृष्टिगत रखते हुए **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020** में आधारभूत सिद्धान्तों के अन्तर्गत नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों जैसे–सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, वैज्ञानिक चिंतन, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय को प्रमुख स्थान दिया गया है।

नैतिक, धार्मिक व आध्यात्मिक शिक्षा में शुभ एवं अशुभ पर विचार होता है। इनमें अच्छे आचरण के लक्षणों पर विचार किया जाता है। अच्छा क्या है और बुरा क्या है? हमें क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए? इसकी भी जानकारी भी इसी प्रकार की शिक्षा से ही मिलती है। नैतिक, आध्यात्मिक या धार्मिक शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान, समाज–शास्त्र एवं मानव–विज्ञान भी व्यवहार के ही शास्त्र हैं, किन्तु ये विज्ञान व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में केवल तथ्य एकत्र कर लेते हैं और उनका स्पष्टीकरण करते हैं। इस प्रकार की शिक्षा में व्यवहार का मूल्यांकन होता है। इस प्रकार की शिक्षा में इस बात पर विचार होता है कि अच्छा या बुरा क्या है? किसी भी कार्य को करने में मनुष्य कितना स्वतन्त्र है? इसमें साध्य एवं साधन

पर भी विचार किया जाता है। भारत में नैतिक, आध्यात्मिक या धार्मिक शिक्षा पर बड़ी गम्भीरता से विचार हुआ है। श्रीमद्भगवत्गीता, गुरू ग्रंथ साहिब, कुरान व अन्य धर्म ग्रंथों में कार्य के शुभाशुभ गुणों पर विचार किया गया है।

शिक्षा से बालक के व्यक्तित्व का में विकास होता है। इसमें उचित एंव अनुचित का या अच्छे एवं बुरे का निर्णय करना आवश्यक है। हम कुशिक्षा नहीं चाहते हैं। 'शिक्षा' शब्द में ही भद्र एवं अभद्र का प्रयत्न निहित है। हम उद्देश्यों का निर्धारण करते समय स्पष्ट रूप से कहते हैं कि शिक्षा द्वारा अमुक परिवर्तन लाने चाहिएं। शिक्षा में औचित्य का निर्धारण आवश्यक है। इसीलिए शिक्षा शास्त्र को नैतिक, आध्यात्मिक व धार्मिक मूल्यों से बड़ी सहायता मिलती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है जहाँ अनेक धर्मो के अनुयायी हैं। यहॉ किसी विशेष धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती है और न ही ऐसा करना चाहिए। परन्तु अनेक धर्म वाले प्रजातंत्र रास्ट्र के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने नागरिकों में धार्मिक सहनशीलता उत्पन्न करे। आज दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति यह है कि धर्म के नाम को लेना भी पाप समझा जाता है। इस कारण आज का छात्र धर्म से दूर अपना विकास कर रहा है। जिसका भयंकर परिणाम यह हो रहा है कि दूसरों के धर्म को समझना तो दूर वह अपने धर्म से भी अनभिज्ञ है और उसका व्यवहार मूल्यविहीन होता जा रहा है। इस कारण हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो छात्रों में धार्मिक सहिष्णुता के साथ–साथ यह क्षमता उत्पन्न करे कि वह विभिन्न धर्मो में समानता देख सकें व प्रत्येक धर्म के अच्छे उपदेशों का अनुसरण कर आदर्श नागरिक बन सकें।

कोठारी शिक्षा आयोग ने सही कहा है– "शिक्षा का उददेश्य है मानव के व्यवहार का उन्नयन कुछ मूल्यों के परिपेक्ष में करना। धर्म, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य बताता है साथ ही यह संसार, मानव व ईश्वर के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सत्य का अध्ययन कराता है।''

विश्व में सांस्कृतिक सामाजिक संघर्ष एवं अशांति का मुख्य कारण मानव मूल्यों का ह्रास होना है। पतन की इस प्रक्रिया पर केवल एक प्रकार से विजय प्राप्त की जा सकती है वह है शिक्षा की प्रक्रिया में धार्मिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक शिक्षा का यथोचित समावेश। धर्म निरपेक्षता की आड़ में यद्यपि कतिपय लोगों द्वारा नैतिक शिक्षा का समर्थन करते हुए धार्मिक शिक्षा पर प्रश्नचिन्ह उठाया जा सकता है। परन्तु महायोगी श्री अरविन्द का कथन समीचीन है –''चाहे धर्म की किस रूप में स्पष्ट शिक्षा दी जाय या नहीं, पर ईश्वर के लिए, मानवता के लिए, देश के लिए, दूसरों के लिए और इन सबमें अपने जीवित रहने के लिए–धर्म के इस सारको प्रत्येक विद्यालय का आदर्श बनाया जाना आवश्यक है।''

विभिन्न धर्मों के छात्रों को धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा किस प्रकार दी जाय? इस समस्या का समाधान गॉधीजी ने यह कहकर किया है–''मेरे लिए नैतिकता, सदाचार और धर्म–पर्यायवाची शब्द हैं। नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्त सब धर्मों में समान हैं। इनको बालकों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिए और इसको पर्याप्त धार्मिक शिक्षा समझा जाना चाहिए।

वर्तमान वास्तविकता यह है कि भौतिकवाद की ओर तेजी से बढते हुए भी हमारे अपने धार्मिक विचार, नैतिक आदर्श, आध्यात्मिक मूल्य और सामाजिक मान्यतायें हैं। अतः हमारी शिक्षा इनकी ओर से अपना मुॅह मोड़कर हमारा भला नहीं कर सकती। भला यह तभी कर सकती है, जब यह धर्म और नैतिकता को अपना अभिन्न अंग बनायें, विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इनको गौरवपूर्ण पद प्रदान करें और सब विषयों के अध्ययनों से इनका सह–सम्बन्ध स्थापित करें।

संदर्भ सूची

1. डा. राम शकल पाण्डेय, शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–2।
2. डा. एस. एस. माथुर, शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–2।
3. पी.डी. पाठक, भारतीय शिक्षा और समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2।
4. जे. पी.अग्रवाल (1993), भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्यायें,
5. डा. सीताराम जायसवाल, शैक्षिक विचार एवं विधियॉ, प्रकाशन केन्द्र, डालगंज, लखनऊ।
6. डा. बी.बी. अग्रवाल, आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्यायें, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2।
7. डा. ओ. पी. सिंह (2008), शिक्षा का दार्शनिक आधार, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।